रमेश कुमार यादव
हिन्दी-विभाग
डी. के. कालेज डुमराँव
बक्सर (बिहार)

बी. ए. भाग-3
हिन्दी-प्रतिष्ठा
'काव्य की आत्मा'

काव्य की आत्मा :-

आत्मा शब्द अर्थ है जीव, जीवनतत्व, चेतना तत्व, परमात्मा तत्व, अंतःकरण, देही, शक्ति, सूर्य, अग्नि, वायु आदि। काव्य की आत्मा के संदर्भ में प्रयुक्त आत्मा शब्द भी मूलतः काव्यशास्त्र का न होकर, न्याय, वेदान्त आदि विभिन्न दर्शनों का है और काव्यशास्त्र में इसका प्रयोग लाक्षणिक अर्थ में किया गया है। आत्मा को शरीर भी कहा गया है। यह शरीरस्थ आत्मा 'प्राण' का पर्यायवाची है जिसके बिना शरीर गतिहीन हो जाता है। उक्त प्राण अथवा चेतना ज्ञान के अर्थ को लेकर काव्य शास्त्र में भी 'आत्मा' शब्द का प्रयोग किया गया है। काव्य की आत्मा में आत्मा शब्द से अभिप्रेत है- काव्य का तत्व अथवा सार, जिसके माध्यम से सहृदय पाठक अथवा दर्शक को काव्य के प्रमुख प्रयोजन, काव्यानंद अथवा रस की प्राप्ति होती है। निःसंदेह यहां 'आत्मा' शब्द मूर्त वाचक रूप में प्रयुक्त न होकर लक्षक रूप में प्रयुक्त हुआ है और यह्यं इसका लक्ष्यार्थ है काव्य का अनिवार्य तत्व।

शरीर के प्रसंग में, हमारे दैनिकक्रिया-कलाप के लिए जो अनिवार्य साधन अथवा माध्यम है उसे 'आत्मा' चेतना, ज्ञान अथवा प्राण कहा जाता है, ठीक इसी तरह शब्दार्थ रूप काव्य शरीर के प्रसंग में 'आत्मा' शब्द से अभिप्राय है काव्य का अनिवार्य, व्यापक एवं आंतरिक सार अथवा तत्व जो कि इसमें साधन रूप से सदा विद्यमान रहता है।

काव्यशास्त्र में सर्वप्रथम 'आत्मा' शब्द का प्रयोग वामन (8वीं सदी) ने रीति को काव्य की आत्मा मानते हुए किया था- 'रीतिरात्मा काव्यस्य'। इनके उपरांत

इसी दृष्टि से आनन्दवर्द्धन (9वीं सदी) ने ध्वनि को 'ध्वनिरात्मा काव्यस्य' और विश्वनाथ (14वीं सदी) 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' ने रस को काव्य की आत्मा स्वीकार करते हुए इस शब्द का प्रयोग किया। इन दोनों आचार्यों के मध्यवर्ती आचार्य कुन्तक (12वीं सदी) ने वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा स्वीकार करते हुए 'आत्मा' शब्द के स्थान पर 'जीवित' शब्द का प्रयोग किया। 'वक्रोक्तिः काव्यस्य जीवितम्'।

इस प्रसंग के अतिरिक्त 'काव्य पुरुष-रूपक' को उद्धृत करते हुए सर्व प्रथम राजशेखर (9वीं सदी) ने और इनके उपरांत विश्वनाथ (14वीं सदी) ने आत्मा शब्द का व्यवहार किया है,

"काव्यस्य शब्दार्थौ शरीरम् रसादिश्चात्मा,
गुणाः शौर्यादिवत्, दोषाः काणत्वादिवत्,
रीतयोऽवयव संस्थानविशेषवत्
अलंकाराः कटककुंडलादिवत् इति।"

वस्तुतः देखा जाए तो यही रूपक काव्य की आत्मा किसे माना जाए- प्रश्न के लिए सर्वाधिक उत्तरदायी है। यह रूपक वामन के समय तक पूर्णतः स्पष्ट नहीं हुआ था। इनसे पूर्व दण्डी ने 'पदावली' को काव्य का शरीर बताते हुए शरीर शब्द का तथा वैदर्भ मार्ग के प्रसंग में 'प्राण' शब्द का प्रयोग किया था और इनके बाद वामन ने उपर्युक्त रूप में केवल 'आत्मा' शब्द का।

इस प्रकार यद्यपि आचार्य वामन-पर्यंत 'आत्मा' शब्द अपने परवर्ती विशिष्ट अर्थ में पूर्णतः स्थिर नहीं हुआ था, तो भी यह धारणा

प्रबल रूप में मान्य हो चली थी कि काव्य में कोई न कोई तत्व सार रूप में अनिवार्यतः विद्यमान रहता है। भामह, दण्डी और उद्भट के अनुसार यह तत्व 'अलंकार' था और वामन के मत में 'रीति' आगे चल कर ध्वनि, वक्रोक्ति और रस को काव्य की आत्मा माना गया।

इस प्रकार काव्य की आत्मा का निर्धारण आज भी एक अनिर्णीत और विवादास्पद विषय बना हुआ है। इसीलिए हिन्दी के आधुनिक आचार्यों ने इस प्रश्न को गैर जरूरी समझ लिया है और इसका विश्लेषण करना भी लगभग छोड़ दिया है।

रमेश कुमार यादव
असिस्टेंट - प्रोफेसर
हिन्दी - विभाग
डी. के. कालेज, डुमराँव
बक्सर (बिहार)